© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 01 | January – March 2018

साहित्य में नारी : अस्तित्व के लिए संघर्ष :

डा. सुदेश कुमारी, हिन्दी प्राध्यापिका

ISSN : 2348-5612 © URR

स्त्रियों की मानसिकता तेजी से बदल रही है। शिक्षित एवं कामकाजी महिलाओं के जीवन में मतभेद बढ़ रहे हैं और अधिक मनोवैज्ञानिक समस्यांए उत्पन्न हो रही है। नारी के प्रति नारी की ही संघर्ष–चेतना सर्वाधिक तीव्र हो रही है। यह चेतना क्यों तीव्र हो रही हैं, इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए अनेक कहानी–लेखिकाओं ने कहानियाँ लिखी हैं। नायिका जो कि विरोधी प्रवृत्ति की होती है या कहानी का रूख अपनी ओर खींचने का प्रयास करने वाली स्त्री पात्राओं के व्यवहार को अगर कभी पारिभाषित नहीं किया जा सकता या कारणों को लेखिकाएँ लिख नहीं सकती तो कभी इनमें ईर्ष्या–द्वेष भाव, हीन–भावना, प्रतिस्पर्धा, आत्म विश्वास की कमी, असुरक्षा सहानुभूति की कमी आदि कारण पाए जाते हैं।

यदि हम नारी मनोविज्ञान के माध्यम से नारी के जीवन में ताक–झांक करें तो उचित होगा। नारी के मनोविज्ञान में एक बात जो प्रायः मिलती है और जो नारी में संघर्ष या ईर्ष्या–द्वेष का कारण बनती है। विशेष तौर पर वह दाम्पत्य संबंधो में अधिक मुखर होती है। यह भावना सुन्दर स्त्री को देखकर जाग्रत होती है। दूसरे, नारी तुरन्त अपने से सुन्दर नारी को नीचा दिखाने का प्रयत्न करती है, समाज अर्थात् दूसरों की निगाहों में उन्हें गिराने की चाह उनमें होती है, स्त्रियों की मनोवृति ही उनकी प्रगतिशील मार्ग को अवरूद्ध करती है। शशिप्रभा शास्त्री की 'चयन' कहानी में 'सुरीली' की आकर्षक देहयष्टि जेठानियों के हृदयों के बीच ईर्ष्या का बीज बो देती है। कुरूप महिलाएँ चाहती हैं कि सभी महिलाएँ उन्हीं की तरह बौनी, सांवली और भारी हों। सुन्दर महिलाएँ जलन–कुंठा का शिकार बनती है। अक्सर उनका सौन्दर्य, उनका आकर्षण ही उनकी जिन्दगी की सबसे बड़ी अवरोधक शक्ति बन जाता है। उनके हर कर्म उनकी हर अपलब्धि पर लोगों का ध्यानाकर्षण होता है। 'छोटे–बंद समाज में वह स्वयं को एक जेल में बंद पाती है, स्वयं में ही वह सिमट जाती है, दूसरों के डर से, निंदा के भय से वह दबी–दबी ही रहती है। उसका वयक्तित्व उभर ही नहीं पाता। यह बहुत बड़े दुर्भाग्य की बात है कि नारी की परस्पर ईर्ष्या की भावना ही उसके मार्ग को अवरूद्ध कर देती है।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित व अति शिक्षित महिलाओं में से न जाने कितनी स्त्रियां ऐसी है, जो ईर्ष्या–द्वेष की शिकार नहीं है। इस विषय में स्त्री का कोई पैमाना नहीं कि वह कैसी स्थिति में कहाँ और कैसे किसी से भी, विशेषकर स्त्री से, ईर्ष्या–द्वेष अपने मन में उत्पन्न कर ले– जाने अनजाने अपने व्यक्तित्व, अपने सौन्दर्य, अपने मकान, अपने कपड़े–गहने, अपनी सफलता और अपनी अन्य खूबियों के कारण क्योंकि इस विषय में उच्चवर्ग की गुणी–सफल महिलाओं को बिल्कुल वैसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसा कि निचले तबके की पढ़ी–लिखी महिलाओं को। लड़कियों में नीचता, हीनता, कुटिलता, ईर्ष्या, लोभ आदि अधिक होता है। इसे कुछ इस तरह समझा जा सकता है। शान्तम्मा बाई का कार्य करती है, मगर महीन और सूक्ष्म कशीदा की कला में निपुण है। सास के भय से उसे अपराधियों की भांति छिपकर कढ़ाई करनी पड़ती है। सहानुभूति, प्रशंसा और प्रोत्साहन की अपेक्षा उसे डांट, फटकार, ईर्ष्या का सामना करना पड़ता है– 'दिल से डर नहीं निकलता। पिछली बार भी भगवान ने उसका साथ नहीं दिया था। इन दिनों अगर बाई की साड़ी न काढ़ रही होती तो जाने कितनी दुखी रहती। वह नहीं जानती, ऐसा क्यों होता है पर मन खराब होने पर सुई–धागा लेकर बैठ जाने से उसे बहुत शान्ति मिलती है .....पिछले वर्ष, बच्चे की मृत्यु के बाद, जब उसका हृदय अपने पाप और संताप का बोझ सहने से इंकार कर देता था, जब उसकी अतृप्त कोख और कुंठित देह हाहाकार कर उठती थी, वह इसी सुई–धागे का सहारा लेती थी। पर तब कपड़े पर दो एक फूल खिलते ही सास आकर ताना मार जाती थी 'क्या औरत है तू। अभी बच्चा मरा, अभी फूल होना तेरे को ?'[1]

तसलीमा नसरीन लिखती है– 'यह एक बीमारी है। इसकी शिकार स्त्रियां अधिकतर होती हैं। लड़कियों की हीन मानसिकता बनाए रखना मानो समाज का नैतिक दायित्व है। अधिकतर लोग सोचते है कि लड़कियों के इनफीरियर हुए बिना परिवार नहीं टिकता। .....यह बड़ी हद तक सुपीरियर बने रहने का एक बढ़िया तरीका है। इस चालाकी के सहारे सभी पुरूष आसानी से सुपीरियर बन जाते है और स्त्रियां रह–रहकर इनफीरियरिटि काम्पलैक्स का शिकार हो जाती हैं।'[2]

इस तरह की हीनभावनाओं से ग्रस्त कर समाज स्त्री के सभी मार्गो में रूकावटें भर देता है– वह है हीन और हर बात में कम होने की भावना। स्त्री को प्रारम्भ से ही सैक्स के आधार पर पुरूषों से हीन माना जाता है। यह भावना जन्म के साथ ही उनमें भर दी जाती है कि पुरूष से हर दृष्टि में कमजोर है, हेय है। इस प्रकार आज उच्च से उच्च शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भी स्त्रियां यह नहीं मान पाती कि वे पुरूषों के समान है या उनके समान कार्य करने में सक्षम हैं। यह हीनभावना ही स्त्री में ईर्ष्या को जन्म देती है। घरेलू महिलाएँ ही नहीं बल्कि नौकरी–पेशा वाली महिलाएँ भी ईर्ष्या के इस भाव से सम्पन्न हुए बिना नहीं रहती। गृहणियां नौकरीपेशा महिलाओं की ईर्ष्या का शिकार बनती है।

महिला कहानीकारों का ध्यान भी स्त्री के इस ईर्ष्या–द्वेष भाव की ओर गया है और उन्होंने इसको भी अपनी कहानियों में स्थान दिया है। मृदुला गर्ग की 'खाली' की नायिका नए मकान में असुविधा से खाना बनाने को तैयार है लेकिन मकान मालकिन के यहां खाने का आमंत्रण स्वीकर कर अपने पति को उसकी तारीफ करने का अवसर नहीं देना चाहती।'[3] ममता कालिया की

कहानी 'मुहब्बत से खिलाइए' की नायिका भी ईर्ष्याग्रस्त है, क्योंकि उसके पति ने किसी अन्य स्त्री के खाने की तारीफ उसी के सामने कर दी है।'[4] मणिका मोहिनी की कहानी 'कहानी का पात्र' की पात्रा अपने पति के प्रति इतनी शक्की व सतर्क है कि वह जब भी किसी से बात करते देखती है तो परेशान हो उठती है और गलत अर्थ निकालने लगती है, भले ही उसका पति उसे जानता तक ना हो।'[5]

किसी ने ठीक ही कहा है 'खाली दिमाग शैतान का घर' जब भी मनुष्य का दिमाग़ खाली होता है तो उसके भीतर न जाने कैसी कैसी ऊल–फिजूल बातें उत्पन्न होती जाती है। जहाँ तक नारियों के विषय में ये कहावत लागू होती है, वहाँ तक यह तथ्य समक्ष आता है नारी के जीवन में अकसर कोई गंभीर उद्देश्य नहीं होता। उसे स्वयं नहीं पता होता कि उसे क्या प्राप्त करना है? वह स्वयं की चाह नहीं जान पाती। अब ऐसी महिलाएँ जब ऐसी महिलाओं से मिलती है जो जीवन में कुछ महत्त्वाकांक्षाएं बनाकर चलती हैं या जीवन से आश्वस्त, सफल, आत्मनिर्भर संतुष्ट तथा खुश दिखती हैं, तो वह उन्हें हानि पहुँचाना चाहती हैं, वह बिल्कुल ही समझ नहीं पाती कि वे महिलाएँ अपने प्राप्य को हासिल करने के लिए इतनी उत्साहित कैसे हो सकती है, जबकी वह स्वयं यह नहीं जानती कि वह चाहती क्या हैं ? कुसुम अंसल ने लिखा है– 'धीरे–धीरे मेहमानों की छोटी–सी भीड़ बन गई थी, जिसमें कोई भी डूब सकता था, पर मलहोत्रा का व्यक्तित्व तैरकर उसके ऊपर आ रहा था। सुधा अपनी भूमिका में सबसे व्यवस्थित, स्मार्ट और खुबसूरत अलग–थलग नज़र आ रही थी। राधिका, साधारण–सी अनाकर्षक और मात्र चिपकी हुई, पर घर के नौकरों को सबसे अधिक आदेश देती–पता नहीं कौनसी भूमिका निभा रही थी।'[6]

इस वर्णन में व्यक्तित्वपूर्ण रखैल और व्यक्तित्वहीन पत्नी को साथ–साथ दिखाया है। इस संबंध में संघर्ष निहित है। परिवार में नारी का नारी द्वारा शोषण अधिक होता है। मृणाल पांडेय की 'चमगादड़ें' की सोनिया अपनी बहन पर दो पैसे कमाने के कारण रौब झाड़ती है कि मेरी यह चीज मत छूओ, वो मत छेड़ो आदि। मारिया द्वारा चार रूपये के लिए माँगने पर झिड़क देती है– 'मर खपकर अस्सी रूपये स्कूल से कमाती हूँ, उसके भी सौ हिस्सेदार हो जाते है। अपने धोबी का हिसाब मै अलग से करूं। बस का किराया अपने पैसे से दूं। धेले का क्रिसमस प्रेजन्ट मिलना तो दूर उधार माँगने पर सब तैयार। इस पर सारा दिन कामों में लगी रहकर भी मारिया जैसे कुछ नहीं करती, क्योंकि वह उसके अपने घर का काम है, जिसके बदले में उसे पैसे नहीं जिल्लत मिलती है।'[7] यह परस्पर ईर्ष्या–द्वेष नारी को नारी का शोषक बना देता है इस व्यवहार के पीछे एक और मनोवैज्ञानिक कारण है। वह सास जो कभी बहू रह चुकी है और अपनी जिन्दगी का एक सुनहरा हिस्सा अपने पति और सास से मिली प्रताड़ना में गंवा चुकी है या अपने बच्चों के सामने पति द्वारा जलील की जाती रही है, अपने बेटे से सहारा पाने के लिए उम्मीद रखती रही है, बेटे की शादी होते ही यदि वह माँ के स्थान पर पत्नी को बहुत मान–सम्मान–प्यार देता है तो स्वाभाविक है कि वह माँ की ईर्ष्या का कारण बनता है। यदि बेटा अपनी पत्नी से वैसा ही व्यवहार करता है, जो उसके पिता ने उसकी माँ के साथ किया, तब भी प्रायः सास लड़के का ही साथ देती है। सुधा अरोड़ा के अनुसार इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि–'उस समय शोषण के सुख का स्वाद लेनेवाली उसकी दमित आकांक्षाएं जागती हैं और शोषक पुरूष का प्रतिरूप बनकर वह अपने शिकार पर वही वार करती है, जिसका घाव वह स्वयं झेल चुकी होती है। कुछ परिवारों में यह घर के मालिक पुरूष की ब्रिटिश–छाप कूटनीति के तहत एक परिवार की दो स्त्रियों को एकजुट न होने देने की 'डिवाइड एंड रूल' नुमा साजिश है।'[8] एक अन्य कारण यह भी है कि जो नारी जिंदगी–भर स्वयं प्रेम से वंचित होती है, वह दूसरों के प्रेम को देख नहीं पाती है, इस कमी के कारण दूसरी महिला के सुख को वह सह नहीं पाती।

दरअसल, बात यह है कि जब नारी ही नारी के प्रति संघर्ष या प्रतिस्पर्धा या विरोध की भावना रखती है तब स्थिति कभी–कभी इतनी जटिल हो जाती है कि उस स्त्री के व्यवहार के विषय में स्वयं उसे छोड़कर कोई अन्य नहीं बता सकता कि उस व्यवहार के पीछे क्या कारण रहे होंगे। यह सदा के लिए रहस्य बनकर रह जाता है। मालती जोशी अपनी कहानी 'क्षमा' में यह बात जगजाहीर करती हुई कहती है–'जब ननद को पता चलता है कई वर्षो के बाद स्वयं भाभी ने पत्र में यह लिखकर 'लड़की की पीठ पर बड़ा–सा दाग़ है' उसकी शादी रूकवा ली थी, वह भाभी से जवाब तलब करने के लिए उसके पास आती है लेकिन यहां आकर इन अनगिनत प्रश्नों के उत्तर जानने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है, क्योंकि मै कभी भी इन्हें जबान पर नहीं लाऊंगी। मगर उसका मन जैसे चीख–चीख़कर पूछ रहा था– 'भाभी, क्या सचमुच तुम्हें मेरे आने से खुशी हुई है या तुम्हारा यह स्नेहमय रूप भी एक छलावा है? एक क्षणिक आवेश में ही तुम वह पागलपन कर बैठी थी या वह भी एक सुनिश्चित षड्यंत्र ही था? मुझ जैसी अत्यन्त साधारण लड़की को इतना अच्छा घर–वर मिलते देख कई लोगों को ईर्ष्या हुई थी? अपनी करनी पर सचमुच तुम्हे कभी पश्चात्ताप हुआ था या अपनी सफलता पर तुम खुश होती रही हो।'[9] अतः ये सब सभी प्रश्न अनुत्तरित ही रह गए।

इस प्रकार महिला कथाकारों ने नारी–मन को भली प्रकार पहचाना है और रंग–बिरंगे चित्रों को कमजोरी के साथ प्रस्तुत किया है। मन्नु भण्डारी की कहानी 'मजबूरी' की पात्रा 'बूढ़ी अम्मा' अपने पोते को साथ रखना चाहती है। उसकी बहू स्वयं ही यह घोषणा कर देती है तो उसकी खुशी का कोई छोर नहीं रहता लेकिन जैसा कि वह जानती है– स्त्री मन की ममता और चंचलता को, स्वयं अड़ोस–पड़ोस में बताती घूमती है कि कहीं बहू अपना फैसला बदल न ले। अब यदि बदल भी ले तो अड़ोस–पड़ोस की शर्म से उसे अपने फैसले पर अटल रहने पर मजबूर किया जा सकता है– 'इसके बाद घर में जो भी आया, उसे यही खबर सुनाई गई। अम्मा इस बात का इतना प्रचार कर देना चाहती थी कि यदि फिर किसी कारण से बहू का मन फिर भी जाए तो शरम के मारे ही वह अपना इरादा न बदल पाए।'[10] स्त्री की स्वयं को नीचा दिखाने या स्वयं को किसी के समक्ष नीचा देखने की प्रवृति

कतई नहीं है। प्रत्येक स्त्री स्वयं को, ईर्ष्या भाव के कारण, दूसरी स्त्री से अधिक निपुण दिखाने का प्रयास किया करती है। मन्नू भण्डारी की कहानी 'मजबूरी' में जब बेटू बिगड़ जाता है तो बहू उसे ले जाने की ज़िद्द करती है, लेकिन सास उसे अनेक प्रकार से तर्कपूर्ण उत्तर देती है– अरे पढ़ लेगा, बहू पढ़ लेगा। उम्र आएगी तो पढ़ लेगा। यह मत सोचना कि मै उसे गंवार ही रहने दूंगी। रामेसुर को भी तो मैनं ही पाला–पोसा है, उसे क्या गंवार रख दिया? फिर यह तो मुझे और भी प्यारा है। मूल से ब्याज ज्यादा प्यारा होता है। इसे तो मै खूब पढ़ाऊंगी, तू चिंता मत कर बहू पर इसे ले जाने की बात मत कर..... ।'[11]

इधर 'अकेली' की पात्रा सोमा बुआ समस्त गांव की सेवा करना अपना धर्म समझती है। हर घर को अपना घर समझती है। गांव में उसी के दूर के रिश्तेदारों के यहां शादी होती है तो उसे इंतजार रहता है कि उसको भी निमंत्रण मिलेगा और पूरी तैयारी में जुट जाती है। अपने गहने बेचकर भेंट–उपहार खरीदकर लाती है। उसकी आगे–पीछे कोई नहीं है लेकिन फिर भी इज्जत–बेइज्जती की चिंता उसे भी है कि यह समाज क्या कहेगा। स्वयं इस कसमकस में जी रही है क्या निमंत्रण आएगा या नहीं और जब निमंत्रण नहीं आता तो भी वह इंतजार करती है कि न जाने ऐन वक्त उन्हें याद हो आए और वो बुलाने आ जाए। 'मुहूर्त तो पांच बजे का है, जाऊंगी तो चार तक जाऊँगी, अभी तो तीन ही बजे है।'[12]

अतः कहा जा सकता है कि नारी–संघर्ष कहाँ, कैसे, क्यों और किससे आरम्भ हो जाए, कहा नहीं जा सकता। इसको जानने के लिए स्त्री–मनोविज्ञान का सहारा आवश्यक है।

अधिकांश नारियां अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। मृदुला गर्ग की 'छत परदस्तक' नामक कहानी की पात्रा नलिनी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। वह असमय ही विधवा हो जाती है, किन्तु अपनी छोटी–सी नौकरी से अपना और अपने बेटे सुधीर का भरण–पोषण करती है। 'नलिनी भी स्कूल में पढ़ाती थी, अपने और सुधीर के खाने–पहनने लायक कमा भी लेती थी।

किंतु रिटायरमेंट के पश्चात् उसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है। यहां भी समस्या और निदान 'अर्थ' ही है। नलिनी की मनःस्थिति और आर्थिक स्थिति का उदाहरण द्रष्टव्य है– 'हिन्दुस्तान लौटकर वह कहाँ जाएगी, क्या करेगी? नौकरी गई। प्रोविडेंट फंड की सारी जमा पूंजी सुधीर को अमेरिका भेजते वक्त निकाल ली थी। तभी न उसका टिकट का जुगाड़ हो पाया था।'[13]

नलिनी के पास न तो घर है और न ही भरण–पोषण के लिए पैसे। जीवन–भर की कमाई से बेटे का भविष्य संवारने के पश्चात् वह बेटे पर आश्रित हो गई है, किन्तु सुंकोचवश उससे कह नहीं सकती। उस निराश्रिता के पास भविष्य की एकमात्र योजना यही है कि–'हिन्दुस्तान वापस लौटकर कोई काम देख लेगी। सुधीर से पैसे माँगना नामुमकिन है थोड़े बहुत जेवर है उसके पास। और कुछ न हुआ तो उन्हें बेचकर कोई छोटा–मोटा धंधा शुरू कर लेगी। कपड़े सीने का, खाना बनाकर दफ्तरों में टिफिन भरकर भेजने का, कुछ भी। एक बार हिम्मत कर ले, तो बहुत कुछ कर सकती है औरत।'[14] नलिनी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है।

'समागम' नामक संग्रह की कहानी है 'बीच का मौसम'। इसकी मुख्य पात्रा माया आई.एम.एस. अफसर है। वैवाहिक जीवन के पश्चात् तलाक लेकर अकेली रहती है और जीवन के निर्णय स्वयं ले सकती है। उसका मानना है, 'हम जैसे मध्यवर्गीय, आर्थिक रूप से ठीक–ठाक, पढ़ी–लिखी औरतों के लिए, चंद रोज का बंसत पा लेना, संभव भी हो जाता है।'[15] वह सदैव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है।

इस कहानी की एक अन्य पात्रा नारी के लिए नौकरी की अनिवार्यता बताते हुए कहती है 'बिल्कुल नही। नौकरी मत छोड़ना। गिलाज़त के बीच रहकर ही, गिलाज़त से लड़ा जा सकता है। फिर बच्चे की जरूरतें पूरी करने के लिए पैसा भी तो चाहिए .....पर तू अपनी नौकरी मत छोड़ना। साधनहीन इंसान कुछ नहीं कर पाता।'[16]

इस प्रकार नारी की संघर्ष–चेतना के प्रश्न में अर्थ के अवलंबन पर विस्तृत विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से विवेचन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि अर्थ का आधार पाकर नारी में संघर्ष–चेतना आई और उसने नारी के जीवन को नए सिरे से सोचने–समझने की शक्ति प्रदान की। ध्यान देने योग्य बात यह है कि नौकरी करने मात्र से नारी ने स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर ली, बल्कि अर्थोपार्जन ने मानसिक मंथन कर निर्णायक शक्ति बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कामकाजी नारी ने पुरूष के समकक्ष अपनी योग्यता सिद्व करके दिखा दिया कि मानसिक शक्ति में वह पुरूष से कम नहीं है। नारी ने अपना बौद्धिक स्तर ऊंचा उठा लिया, किन्तु पुरूष की मानसिकता उसके प्रति क्षुद्र ही रही। वह उसे अर्थोपार्जन की सहायिका के रूप में तो स्वीकारता रहा, किन्तु औरत और मर्द का भेद मिटाने को तैयार नहीं हुआ। आज की कामकाजी नारी घर और ऑफिस दोनों ही मोर्चो पर लड़कर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है। उसके पूर्ववर्ती दायित्व ज्यों के त्यों हैं तथा नौकरी उसकी स्व–इच्छा है। एक ओर उसमें आत्मनिर्भर बने रहने की तीव्र इच्छा है, तो दूसरी ओर बच्चों की उपेक्षा की हीनभावना भी है। पुरूष उसका सहयोग तभी करता है, जब वह उसके अर्थिक जीवन में महत्त्व रखती है। अन्यथा घर बैठकर बच्चे संभालने की सलाह देने से बाज नहीं आता।

कार्यालय भी नारी–शोषण के अड्डे बन गए हैं। औरत को महज देह मानने वाले सहकर्मी पुरूष तथा बॉस उसके सामने अनुचित माँगे रखते हैं और आत्मनिर्भर औरत का बाजार लगा देते हैं। इस प्रकार अर्थावलंबी होते हुए भी घर और दफ्तर दोनों ही जगह शोषित है। भूंमडलीकरण ने तो उसे ऊंचे दामों वाली वस्तु बनाकर हर ब्रांड के साथ बेचना शुरू कर दिया

है यह खरीद–फरोख्त इतनी सफाई से होती है कि नारी अपनी सुंदरता के गुमान में ही भ्रमित रहती है। 'जब तक सुन्दर देह है तभी तक औरत का मोल है', आज के उपभोक्तावादी समाज का मूलमंत्र ही यही है।

इस प्रकार हम देखते है कि नारी अस्तित्व के मार्ग में नारी का कामकाजी होना उसकी शक्ति का प्रतिक है, किन्तु क्रय–विक्रय के इस असुरक्षित वातावरण में उसे अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखते हुए मार्ग तय करना होगा।

7. शोषित–शोषक : आमने–सामने :

मानव हमेशा नवीन खोज करने में लगा रहता है। यही बात लेखक व लेखिकाओं के विषय में भी उचित है। प्रायः लेखिकाओं ने नए संदर्भगत मूल्यों की खोज की है। उनकी अन्वेषण–वृति ने सामाजिक परिवेश में नवीनता लाकर उसे कथा रूप मे प्रस्तुत किया है। समय–समय पर परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसमें नवीन दृष्टियों का समाकलन भी हुआ है। इस परिवर्तन ने सामाजिक जीवन को नए आयाम दिए। इन लेखिकाओं की सूझ–बूझ और विवेकशीलता ने अत्यन्त पैनी दृष्टि से इस संदर्भ में विचार किया। उन्होने अपने समय के सत्य को पहचाना, शोषण के विभिन्न आयामों को समझा और उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।– 'मृदुला गर्ग इसी संदर्भ में लिखती है– 'इस औरत–तर्क की पहली शर्त यह है कि औरत पर थोपी गई नैतिकता को खुरचकर भीतर के इन्सान को पहचाना जाए .....जो कहानी नैतिकता का ढोल पीटे बगैर बेबाकी से ऐसी औरत का चित्रण करे और पाठक को अपने भीतर झांककर दुबारा अपना विश्लेषण करने पर मजबूर करे तो वह निश्चित रूप से चेतना–सम्पन्न कहानी कहलाएगी।'

अधिकांश कहानी–लेखिकाओं ने अपने सीमित अनुभव–जगत से बाहर निकलकर अपनी कहानियों को बड़े–बड़े प्रश्नों से जोड़ा है और इन प्रश्नों का समाधान खोजकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। आज हम सभी कठिन समय से गुजर रहे है और स्त्री तो और भी अधिक दारूण स्थिति में है। उसे संघर्ष करना पड़ रहा है और साथ ही जीवन–यापन के लिए धन की व्यवस्था भी करनी पड़ रही है। शोषण भी उसी का सबसे अधिक हो रहा है। ऐसा नहीं कि उसका शोषण पुरूष–समाज ही कर रहा हो, बल्कि स्त्री का शोषण करने में स्त्री भी पीछे नहीं। उसे जब भी अवसर मिलता है, वह उसका शोषण करती है। बीसवीं शताब्दी की कहानियों को पढ़ने के उपरान्त लगता है कि इस शताब्दी की कहानियों मे स्त्री–शोषण का चित्रण काफी विस्तार से किया गया है। अब 'स्त्री का अनुभव संसार सतत वृद्धि पा रहा है। उसके सोचने का क्षेत्र वृद्धि पर है। यह अनुभव वृत्त का विस्तार है और इसका बहुआयामी होना अत्यन्त ही आवश्यक है।'[17]

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की कहानियों में परम्परा का पूर्णतः निषेध कर किसी भी तरह के शोषण–निरपेक्ष भाव–बोध के तीखे अनुभव ने नारी के भीतर नवीन ऊर्जा एंव संबंधो की तलाश की सभी आस्थाओं एवं विश्वासों को झुठला दिया है। सामंतवादी नीतियों के विरूद्ध उन्होंने अपने राजनीति, सामाजिक व आर्थिक चक्र के मध्य स्वंतत्र दबावहीन अस्तित्व की चाहना की है। हर तरह से उनकी नारी–पात्र परिवेश में अपने अस्मिता को बचाए रखने के लिए प्रयत्नशील है। उनके लेखक से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि मानव ही शोषण का संस्थापक है। इसलिए मनुष्य के लिए वही वस्तुएं मूल्यवान हैं, जो उसे हर्ष प्रदान करें, जिससे उसे संतुष्टि प्राप्त हो, जो उसकी इच्छाओं को पूर्ण कर सकें। अतः 'मानव का धर्म मानवता की सेवा करना होना चाहिऐ–ऐसा भी कई लेखिकाओं का ही अनुभव रहा है। समाज को बदलने की कामना सभी करते हैं– 'समाज कुछ नहीं है व्यक्ति ही सबकुछ है। व्यक्ति के लिए समाज है समाज के लिए व्यक्ति नहीं।'[18]

व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि परम्परा से हटने का मतलब है अपना रास्ता बनाओ और उस रास्ते में किसी से अपेक्षा न रखो कि कोई व्यक्ति किसी के काम आएगा। इन परिस्थितियों में कहानीकार महिलाएँ क्या 'निर्णय' लेती हैं, उसे विश्लेषित भी करती हैं। उन्होंनें दिखाया है कि विश्रृंखल शोषण की स्थितियों से हर मोर्चे पर लड़ते–लड़ते, व्यक्ति कैसे थकता गया, टूटता गया, जीवन के जटिल संदर्भो के बीच मानव कैसे लघु होता गया। नवीन वैज्ञानिक परिवेश से प्रभावित भौतिकवादी मृत्युदृष्टि के कारण, अर्थजीवन का लक्ष्यमूल्य बन गया। आलोच्य कहानियों में नारी–संबंधो पर बहुत ही संकुचित होती उनकी सोच' को उजागर किया गया। अब वह वैयक्तिक जीवन जीने की आकाक्षीं है। इसके लिए वह पति, परिवार, माता–पिता, भाई–बहन को भी महत्त्व नहीं देती। वह समस्त संबंधों से अलग मुक्त आकाश में श्वास लेना चाहती है। इन परिवर्तनों के चलते–'खंड–खंड बंटकर कई स्तरों पर जीना आज की नारी की नियति बन गई है।'[19]

इन कहानियों का कथ्य रहा है– स्त्री–पुरूष की महत्त्वाकांक्षा, पुरूष के दोहरे नैतिक मानदण्ड, उनके बीच द्वंद्व, संबंध में आई दरार। स्त्री परिवार की जड़ता, संत्रास, घुटन, ऊब एवं जीवन की जटिलताओं से बाहर निकलकर मुक्ति की सांस लेना चाहती है। अपनी अपेक्षाओं के प्रतिकूल परिस्थितियों से मोहभंग के झटके झेल रही है। पति से अपेक्षित व्यवहार, यौन–पूर्ति, आर्थिक अभाव का समाधान वह अन्यत्र खोजती दृष्टिगोचर हो रही है। 'आज की नारी किसी अन्य पुरूष के साथ अल्पकालिक शारीरिक संबंध स्थापित करने को दाम्पत्य जीवन के प्रति विश्वासघात नहीं मानती। दाम्पत्य जीवन की घुटन और अतृप्ति को बदलाव के माध्यम से पूरा करने का प्रयास वह कर रही है।'[20]

आज स्त्री–पुरूष दोनों ही यौन संबंध अथवा तृप्ति के लिए बिना किसी 'पाप–बोध' के लालायित हैं। मूल्यों के प्रति विद्रोह–प्रक्रिया से गुजरता हुआ परिवार, दाम्पत्य–संबंधो के तनावों को बड़ी तीव्रता के साथ महसूस कर रहा है। अधुनिक स्त्री परम्परागत तत्त्वों से ऊपर उठकर अलग खड़ी दिखाई देती है। उसकी सोच को नवीन दिशा मिली है। पातिव्रत का मिथ वह तोड़ चुकी है। पति के देवत्व की भावना अब खंड–खंड हो चुकी है। पति को वह बराबरी का दर्जा देती है। देवत्व के स्तर से वह नीचे उतर चुका है। परिवार के बीच या अपने व्यक्तित्व को लेकर वह स्वयं के प्रति अत्यन्त सचेत हो चुकी है। अन्यायों का सामना

करना उसने सीख लिया है। पुरूषों के पुनर्विवाह के प्रति समाज के उदार और नारी के प्रति अनुदार दृष्टिकोण को वह अनुचित समझने लगी है। प्रेम–विवाह, तलाक, पुनर्विवाह के मूल्य समाज में स्वीकृत हो रहे है।

शशिप्रभा शास्त्री स्त्री के इस दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए अपनी कहानी 'गंध' में लिखती है– 'स्त्रियों के लिए चकले या पुरूष वेश्यालय क्यों नहीं हुए? जहाँ वे भी स्वतंत्रता से जा सकती? पुरूष और स्त्री की नैतिकता के मानदण्डों में अंतर क्यो? क्या स्त्री के मन नहीं है।'[21]

इसी विषय पर प्रकाश डालती हुई सुप्रसिद्ध कहानीकार महिला कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी कहानी 'मित्रो मरजानी' में शारीरिक पवित्रता–संबंधी मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाया है। उन्होंने दर्शाया है कि मित्रो को समस्त पारिवारिक और सामाजिक धार्मिक मूल्यों को कुचलकर सामने आती है। उसके इस निर्भीक स्वरूप के समक्ष पति भी हीन बन जाता है। वह आवयकताओं को लेकर घुटती नहीं, अपितु पूर्ण उद्घोष के साथ कहती है– 'अब तुम्हीं बताओ जिठानी, तुम जैसा सत–बल कहाँ से पाऊं, लाऊं? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। .....बहुत हुआ हफ्ते–पखवारे ....और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली–सी तड़पती हूँ।'[22] मित्रो यौन–संबंधी समस्त नीति–नियमों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहती है –जिंदा जान का यह कैसा व्यापार? अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म।'[23]

जहाँ तक वैवाहिक संबंधो या शोषण का प्रश्न है, वहाँ वैवाहिक मूल्यों के विरूद्ध प्रतिक्रिया को स्त्री और पुरूष दोनों ने ही व्यक्त किया है। दोनों के विचारों से परिचित हो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि उनके व्यक्तित्व के विकास में विवाह बाधक है। पवित्रता की सीमा क्या सिर्फ शरीर के दायरे में बाधीं जाती है? वे आत्मपरक नैतिकता, शारीरिक शुद्धि के मूल्यों को निरर्थक मानती हैं। इसलिए इस दशक की कहानियों में यौन–संबंधो का चित्रण अतिशय रूप में हुआ है। प्रेम को नैतिकता से अलग करने वाली दृष्टि पाप के बोध से जुड़ी हुई है। इस काल की लेखिकाओं ने प्रेम में पाप के बोध के साथ संघर्ष किया है, क्योकि इस नैतिकता की विडंबना यह है कि पुरूष के लिए यह एक है और स्त्री के लिए दूसरी। स्त्री जब पर–पुरूष पर अनुरक्त होती है तो इसे बुरा माना जाता है। इस रूढ़ि का विरोध इन कहानियों में स्पष्टः किया गया है और प्रेम की वैयक्तिक मान्यता का निरूपण इसकी स्वंतत्र विशेषता बन चुकी है। अब लेखिकाएँ कहीं–न–कहीं तो यह मानने लगी है कि जब तक जीवनमूल्यों को वे अपने साहित्य के प्रतिमान नहीं बनाएंगी, तब तक वे पाठक के मानसिक मार्गदर्शन के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। साहित्य में मूल्यों के प्रति संघर्ष जीवनमूल्यों के संघर्ष का प्रतिरूप ही होते है। 'साहित्य समीक्षा' में बाबू गुलाबराय कहते है– 'साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं है। अतः यह बात सर्वमान्य है कि जिसका जीवन में मूल्य है, उसका साहित्य में भी मूल्य है।'[24]

मन्नु भण्डारी अपनी कहानियों में दर्शाती हैं कि –मोहभंग की प्रक्रिया के चलते, आधुनिकता की चकाचौंध में डूबी, बुद्धिजीवी नारी की शनैः शनैः अपने ही विश्वास और आस्थाएं असत्य लगने लगी है। वे संघर्ष कर घर–परिवार और मातृत्व को नकारती है। फिर विवाह को बंधन मानने वाली ये युवतियां अपनी रूमानी भावुक परिकल्पनाओं के सहारे बहुत समय तक अकेली–स्वतंत्र जीवन नहीं बिता सकती। उनका अपनी मूलभूत आकांक्षाओं के विरूद्ध संघर्ष उन्हें अर्थहीन लगने लगता है। अकेलेपन की पीड़ा उन्हें इतना सालती है कि वे स्वीकार करती है कि 'बच्चों के बिना जीवन अधूरा ही रहता है।' ....नारी को एक साथी चाहिये एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और बच्चे चाहिए। उच्च से उच्च शिक्षा भी उसकी इस भावना को नहीं कुचल सकती।'[25]

आधुनिक युग के ये कृत्रिम मान–मूल्य 'साधारण लड़कियों से भिन्न, उनसे उच्च, उनसे श्रेष्ठ'[26] बने रहने की यह इच्छा उसे थोथी और मिथ्या लग रही है। आज की नारी किसी भी कीमत पर आत्मशक्ति–सम्पन्न एक दायित्वपूर्ण सामाजिक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होना चाहती है– 'टूटते जीवनमूल्य और लेखिका की भूमिका' में प्रभा सक्सेना लिखती हैं– 'मेरी अपनी समझ में 'मूल्य' वे अवधाणाएं है, जो जीवन को नियंत्रित व गतिशील बनाए रखकर मनुष्य को विपत्ति व विषम परिस्थितियों में संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं। वे जीवन को उदात्त, सुन्दर व मंगलमय बनाने में योगदान करती हैं।'[27]

एक और विशेष बात इन नारी–पात्रों में देखने को मिली है कि वे हर प्रकार की स्वतंत्रता पाना चाहती है। निर्णय भी कर लेती हैं। निम्न स्तर तक भी पहुँच जाती है। लेकिन फिर भी उनमें अपने निर्णय को लेकर किसी भी तरह से 'पछतावे' का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। लेखिकाओं ने जहाँ नवीनता की ओर आधुनिकता की ओर स्पष्ट आग्रह प्रकट किया है वहीं कहीं–कहीं परम्परागत मूल्यों को संस्कारों के साथ स्वीकार करने का आग्रह प्रकट किया है फिर भी जहाँ पुरूष के अत्याचार हैं, वहाँ इनसे मुक्ति पाने के लिए वे नारी–संघर्ष को उचित मानती है, ठहराती है।

अतः हम कह सकते है कि मूल्यों के प्रति नारी के भीतर ही कही संघर्ष–चेतना घर कर चुकी है और उसने स्वयं की स्वतंत्रता के लिए बीड़ा उठा लिया है लेकिन वे पूर्णतः सफल नहीं हो सकी है, क्योकि 'महिलाएँ ही महिलाओं की सबसे बड़ी शत्रु है।'[28]

8. निष्कर्ष :

बीसवी शताब्दी की कहानी–लेखिकाओं की कहानियों में नारी की मानसिकता, नारी की समाज में वास्तविक स्थिति, नारी–प्रकृति और समाज के प्रति उसका संघर्ष–भाव आदि महत्त्वपूर्ण दस्तावेज क़ैद है। नारियों ने स्वानुभूति के आधार पर नारी–विशेषज्ञ के समान नारी के नारी की दुश्मन होने की स्थिति के प्रति संघर्ष और साथ–साथ विद्रोह भी प्रकट किया है, चाहे यह पात्र द्वारा हो या स्वयं लेखिका के द्वारा।

इन कहानियों के अध्ययन के उपरान्त ऐसे उदाहरण मिल जाते है जहाँ नारी ही नारी के लिए अभिशाप बन जाती है–इस दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार है नारी की मानसिकता। महिलाएँ मिलकर किसी एक कमज़ोर शिकार बनी महिला के प्रति हिसंक तमाशा देखती रहती हैं। स्त्री की मानसिकता ही कुछ ऐसी है कि उसे पर–चर्चा में आनन्द आता है। खलनायिकाओं के व्यवहार को अगर कभी परिभाषित नहीं किया जा सकता या इसके पीछे पाए जाने वाले कारणों को लेखिकाएँ जबान पर नहीं ला सकतीं, तो कभी इनके पीछे पाया जाने वाला द्वेष–भाव, हीनभाव, होड़, आत्मविश्वास की कमी, असुरक्षा, महिलाओं को दूसरों की नजरों में गिराने की चाह, शिकायतें करते रहने की आदतें, प्रतियोगियों को अपने मार्ग से हटाने की चाह, अपने लिए सारा यश प्राप्त करने का प्रयत्न सदा आकर्षण का केन्द्र बने रहने की प्रबल इच्छा–स्त्रियों की यह मनोवृत्ति ही उनके प्रगतिशील मार्ग को अवरूद्ध करती है। ये भाव सभी वर्गों की महिलाओं में पाए जाते हैं। जब ईर्ष्या जैसी आत्मनाशक भाव शिक्षित महिलाओं में घर कर जाता है, तो उतनी ही अधिक योग्यता के साथ वह विकट रूप धारण करता है।

बीसवीं शताब्दी की कहानियों की लेखिकाओं का संदेश है कि महिलाओं को इस दिशा में भागीरथ प्रयत्न करना चाहिए। महिलाओं को सदा एकजुट होकर, सहानुभूति में एक–दूसरे का साथ देते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। यही प्रयत्न उन्हें सफल बना सकता है, अन्यथा नारी के लिए उसका नारीत्व अभिशाप बनकर रह जाएगा साथ ही लेखिकाओं का यह संदेश भी है कि नारी की मानसिकता में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक है। यह तभी होगा, जब उसे शिक्षित किया जाएगा या शिक्षा–ग्रहण करने के अवसर प्रदान किए जाएंगे, जब वह तथाकथित नारी–सुलभ कमजोरियों पर विजय पा लेगी और इस मार्ग में महिलाएँ ही एक–दूसरे की सहायक बनेंगी, न कि उन्हें अपनी प्रतियोगी समझकर परास्त करने का प्रयास करेंगी। वे महिलाओं से प्रेम करने का संदेश देती हैं। आपसी प्रेम के माध्यम से ही वे एक–दूसरी की सहयोगी बन सकेंगी और अपना स्थान समाज में ऊंचा कर सकेंगी। अब समय आ गया है कि वह अपने ऊपर थोपी गई झूठी नैतिकताओं को उतार फेके। वे नारी की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में है। उनकी कहानियाँ नारी की वैयक्तिकता को प्रतिष्ठा देती हैं। वे दर्शाती हैं कि नारी में स्वाभिमान का उदय होने पर उनमें निर्णायक तत्त्व उदात्त रूप में आ जाता है तथा उनमें एक विशेष प्रकार की दृढ़ता आ जाती है। इन्हीं उदात्त गुणों से खलनायकनुमा पात्रों में हृदय–परिवर्तन की पक्रिया दिखती है। कुछ नारी–पात्र मन से सारा विष निकाल, उदारतापूर्ण क्षमा माँग लेती हैं या प्रतिहिंसात्मक क्षणिक आवेग में बह जाने के लिए क्षमा माँग लेती है। कई कहानियों में कुछ ठोस संबंधो का भी वर्णन मिलता है, जहाँ न शिकायतें, न पर–चर्चा, न चुग़लखोरी न दूसरों के निजी मामलों में दखलअंदाज़ी और न ही कोई स्वार्थ है। वहाँ स्त्री पुरूष के समान स्वीकृति के लिए लड़ती हुई नज़र आती है।

संदर्भ

1. मृदुल गर्ग, दो एक आदमी, टुकडा–टुकडा आदमी, पृ. 62
2. तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की : नष्ट गद्य, पृ. 39
3. मृदल गर्ग, खाली, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 49
4. ममता कालिया, मुहब्बत से खिलाइए, पृ. 4
5. मणिका मोहिनी, कहानी का पात्र, पृ. 8
6. कुसुम अंसल, लेखिका, प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ. 64
7. मृणाल पाण्डे, चमगादड़ें, पृ. 45
8. सुधा अरोड़ा, हंस (1995) से उद्धत, पृ. 15
9. मालती जोशी, क्षमा, पृ. 42
10. मन्नु भण्डारी, मजबूरी, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 22
11. वही, पृ. 26
12. वही, पृ. 167
13. मृदुला गर्ग, समागम, पृ. 85
14. वही, पृ. 85
15. वही, पृ. 103
16. वही, पृ. 114
17. डॉ. पुष्पपाल, महिला कहानीकार, प्रतिनिधि कहानियाँ भूमिका से, पृ. 9
18. डॉ. सुनील कौशिक, दसवें दशक के हिन्दी नाटकों मे वर्ग चेतना, पृ. 43 (अप्रकाशित शोध–प्रबंध)
19. डॉ. रणबीर रांग्रा, सृजन की मनोभूमि : भारतीय लेखिकाओं से साक्षात्कार, पृ. 65
20. निरूपमा सेवती, पतझड़ की आवाज़ें, पृ. 43
21. शशिप्रभा शास्त्री, गंध, दो कहानियों के बीच, पृ. 65
22. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ. 20
23. वही, पृ. 61
24. बाबू गुलाबराय, साहित्य समीक्षा, पृ. 18
25. मन्नू भण्डारी, जीती बाजी की हार, (मै हार गई), पृ. 39

26. मन्नू भण्डारी, गीता का चुम्बन, (मै हार गई), पृ. 32
27. डॉ. प्रकाश आतुर, साहित्य की प्रतिबद्धता और सरोकर, पृ. 49
28. धर्मवीर (संपादक), एक अज्ञात हिन्दू औरत, सामन्तनी उपदेश, पृ. 28